ISSN-2250-2335

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की अर्द्ध वार्षिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

29

• वर्ष-14 • अंक 29 • अक्टूबर-दिसंबर 2021 • पूर्णांक 66 • मूल्य 100 रुपए

• प्रधान संपादक - देवेश ठाकुर • संपादक - डॉ. सतीश पांडेय

Scanned with CamScanner

ISSN-2250-2335 Reg. No. MAHHIN / 2008 /26222

समीचीन

(साहित्य-समाज-संस्कृति और राजनीति के खुले मंच की त्रैमासिक-अव्यावसायिक पत्रिका)

पीयर रिव्यूड व यू. जी. सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित जर्नल

प्रबंध संपादिका :
डॉ. रोहिणी शिवबालन
प्रधान संपादक-प्रकाशक :
डॉ. देवेश ठाकुर
संपादक :
डॉ. सतीश पांडेय
संयुक्त संपादक :
डॉ. प्रवीण चंद्र बिष्ट
डिजिटल संपादक :
डॉ. मनीष कुमार मिश्रा

संपादकीय-संपर्क :
बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा,
घाटकोपर (प.), मुंबई-400 084.
टेलिफोन : 25161446
Email: sameecheen@gmail.com
website-www.http//:
sameecheen.com

विशेष :
'समीचीन' में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबद्ध रचनाकारों के हैं। संपादक-प्रकाशक की उनसे सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विवादों का न्याय-क्षेत्र मात्र मुंबई होगा। सभी पदाधिकारी पूर्णरूप से अवैतनिक।

परीक्षक विद्वत मंडल : (Peer Review Team)

1) प्रोफेसर ताकेशी फुजिई
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
टेक्यो यूनिवर्सिटी फॉर फॉरेन स्टडीज, टोक्यो।

2) प्रो. (डॉ.) देवेन्द्र चौबे
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

3) प्रो. (डॉ.) वशिष्ठ अनूप
हिन्दी विभाग, काशी हिंदू विवि., वाराणसी, (उ. प्र.)

4) डॉ. नरेन्द्र मिश्र
प्रो. हिंदी, मानविकी विद्यापीठ, इग्नू मैदानगढ़ी, दिल्ली110068

5) प्रो. (डॉ.) करुणाशंकर उपाध्याय
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई।

6) डॉ. अनिल सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी अध्ययन मंडल, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई।

7) प्रो. (डॉ.) सदानंद भोसले
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सावित्रीबाई फुले पुणे विद्यापीठ, पुणे।

8) प्रो. (डॉ.) शरेशचंद्र चुलकीमठ
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़।

9) डॉ. अरुणा दुबलिश
पूर्व प्राचार्य, कनोहरलाल महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ (उ. प्र.)

स्वामी, मुद्रक, प्रकाशक : देवेश ठाकुर ने प्रिंटोग्राफी सिस्टम (इंडिया) प्रा. लि., 13/डी, कुर्ला इंडस्ट्रियल एस्टेट, नारी सेवा सदन रोड, नारायण नगर, घाटकोपर (प.) मुंबई-400 086 में छपवाकर बी-23, हिमालय सोसाइटी, असल्फा, घाटकोपर (प.), मुंबई-400084 से प्रकाशित किया।

• वर्ष-14 • अंक 29 • अक्टूबर-दिसंबर-2021 • पूर्णांक 67 • मूल्य 100 रुपए

सहयोग : एक प्रति रु. 100/-, वार्षिक रु. 400/-, पंच वार्षिक रु. 2000/-

सीधे समीचीन के खाते में भेजने के लिए : खातेधारक का नाम : समीचीन / sameecheen

A/C No. 60330431138, Bank of Maharashtra,

Dr. Ambedkar Road, Dadar, Mumbai. IFSC : MAHB0000045

Scanned with CamScanner

इस अंक में :

1. अपने तई 6
2. दलित संवेदनाओं की अभिव्यक्ति और हिन्दी सिनेमा
   - डॉ. प्रणु शुक्ला 07- 18
3. निर्मल वर्मा के कथा साहित्य में प्रतिबिंबित उनका जीवन
   - रंजना बौनाल डॉ. ममता पंत 19 - 24
4. मोहन राकेश की अन्तर्यात्रा - डॉ. रमा विनोद सिंह 25 - 29
5. देवेश ठाकुर के साहित्य में नारी विमर्श - डॉ. मनोज कुमार दुबे 30 - 35
6. प्रयोगवाद: हार्दिकता व बौद्धिकता के रसायन की तलाश
   - डॉ. रमेशचन्द सैनी 36 - 43
7. बिजेंद्र सिंह की कविताओं में जीवन-मूल्य - डॉ. अजीत पाल 44- 49
8. श्री नरेंद्र कोहली के साहित्य में सांस्कृतिक व्यंग्य
   - जी. शुभारानी 50- 56
9. यही सच है के फिल्मांतरण में फिल्म निर्देशक का कौशल
   और सृजनशीलता - डॉ. गोकुल क्षीरसागर 57-65
10. प्रभा खेतान की आत्मकथा में स्त्री चेतना के स्वर
    - रामलखन राजौरिया 66-69
11. मानसिक यातना से जूझती 'तिरिया जनम'- नेहा त्रिपाठी 70-75
12. अज्ञेय के कथा-साहित्य में दार्शनिक एवं आध्यात्मिक मूल्य
    - सुरेन्द्र शर्मा 76- 82
13. धर्मपाल साहिल के उपन्यासों में जीवनमूल्य संक्रमण व
    विघटन - सोनिया 83-88
14. नये समय की नयी स्त्री की कविता रचती सविता सिंह की
    कविताएँ-कार्तिक राय 89- 98
15. ग्रामीण भारत की महिलाओं पर भूमंडलीकरण का प्रभाव
    - कल्याणी प्रधान 99-104
16. बंगाल के बाउलों की साधना - अंकिता शाम्भवी वर्मा 105-111

Scanned with CamScanner

17. कबीर का जीवन और सामाजिक चिंतन
– अरविंद कुमार यादव 112–118

18. वीरेन्द्र मिश्र तथा समकक्ष कवियों के गीतों में आज की नारी
का बदलता स्वरूप – मोहन बैरागी 119–122

19. समकालीन हिंदी कविता: संवेदना और अभिव्यक्ति
– मुकेश कुमार 123–133

20. दक्खिनी हिन्दी गद्य साहित्य का मूल्यांकन
– डॉ. नूरजाहान रहमातुल्लाह 134–140

21. आदिवासियों का पुलिस द्वारा शोषण और उसका औपन्यासिक
प्रतिफलन – डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय 141–148

22. डॉ. सत्य प्रकाश मिश्र का मार्क्सवादी साहित्य चिंतन
– रूबी त्रिपाठी 149–157

23. स्वाधीनता-पूर्व मूक फिल्मों का दौर – डॉ. सत्यजीत कुमार 158–163

24. आधुनिक हिन्दी कहानी-साहित्य में बाल-मनोविज्ञान
– विकास कुमार सिंह 164–167

25. हिमाचल की कहानियों में नारी शोषण के विविध संदर्भ – डॉ. ममता 168–173

26. गांधीवादी विचारधारा का भगवानदास मोरवाल के उपन्यासों
पर प्रभाव-शोभा जोशी 174–179

27. शिक्षाजगत की कसौटी और ऑनलाइन कक्षाएँ
– डा. रीना थामस 180–185

28. डॉ. मानसिंह दहिया आनन्द के काव्य में राष्ट्रीय चेतना
– डॉ. नरेश कुमार सिहाग 186–191

29. चंबा जनपद की लोकगाथाएँ एवं मेले – छविंदर कुमार 192–199

30. उपन्यास 'बा' में कस्तूरबा – डॉ. दया दीक्षित 200–203

31. बालसाहित्य के संदर्भ में – डॉ. सुरेन्द्र विक्रम 204–208

32. क्यों चुप तेरी महफिल में है!: वस्तु एवं भाषा के नये आयाम
–डॉ. मीना सुतवणी 209–214

33. मेघदूत : आधुनिक भारतीय चित्रकारों की दृष्टि में – मिठाई लाल 215–222

Scanned with CamScanner

आदिवासियों का पुलिस द्वारा शोषण और उसका औपन्यासिक प्रतिफलन

डॉ. उमेश कुमार पाण्डेय

हमारे प्रशासक आज भी समाज के कमजोर वर्गों के प्रति संवेदनशील नही हैं। खासतौर से हमारी पुलिस का व्यवहार कमजोर वर्गों विशेषतः दलितों और आदिवासियों के लिए बहुत गैर जिम्मेदाराना रहा है। देश में कानून-व्यवस्था बनाये रखने की जिम्मेवारी पुलिस को दी गयी है। पुलिस आज भी ब्रिटिश शासन के दिनों की भाँति ही कामकाज का ढंग अपनाये हुए है। इसका चरित्र अभी तक जनतांत्रिक नहीं हो पाया है और वह जनता से सुचारु संवाद स्थापित नहीं कर पायी है। आदिवासी इलाकों में बहुधा पुलिस और जनजातीय लोगों के बीच टकराव होता रहता है। आदिवासियों को कई बार झूठे आरोपों में गिरफ्तार किया जाता है और उन पर गैर जरूरी मुकदमें दर्ज किये जाते हैं। महिलाओं के प्रति पुलिस का रवैया बहुत ही असंतोषजनक रहा है, आये दिन उनका दैहिक शोषण किया जाता है। आदिवासी क्षेत्रों में थानों में ही बलात्कार की कई घटनायें सामने आ चुकी हैं। न्याय की आस के केन्द्रों में इस तरह की घटनायें निहायत अफसोसजनक हैं। जनता की नजर में पुलिस की छवि इस कदर धूमिल हो चुकी है कि लोग विषम परिस्थितियों को छोड़कर अपने ऊपर होने वाले अत्याचार को दर्ज कराने थानों में जाना पसंद नहीं करते।

खानाबदोश और घुमक्कड़ प्रकृति की जनजातियों में पुलिस के अत्याचार की स्थिति और गंभीर है। रोजी-रोटी की तलाश में भटकती ये जनजातियाँ अक्सर उनके दमन की शिकार होती हैं। समाज के रुतबेदार लोगों के साथ मिलकर पुलिस इनका शारीरिक और आर्थिक शोषण करती है। झूठे मुकदमों का भय दिखाकर जनजातीय लोगों से पैसों की वसूली करना आम बात है। इसी तरह शराब के ठेकेदारों, जंगल के ठेकेदारों और वनकर्मियों के साथ मिलकर भी पुलिस आदिवासियों को तंग करती है। उनको छोटे-छोटे अपराधों के लिए जेल भेज दिया जाता है। कुछ वर्ष पूर्व केन्द्र सरकार ने अकेले झारखण्ड राज्य में आदिवासियों पर चल रहे एक लाख से अधिक मामलों को वापस लेने का निर्णय किया है। इनमें अधिकांश मामले वन संपदा की चोरियां, लकड़ी का अवैध पातन, पशुओं के चरान-चुगान तथा आरक्षित वन क्षेत्रों में बिना अनुमति के प्रवेश जैसे छोटे-छोटे मामले दर्ज थे।[1] यह देखने में आया है कि इन्ही छोटे-छोटे मामलों की वजह से आदिवासी लगातार पुलिस द्वारा प्रताड़ित किये जाते हैं।

आदिवासी चूँकि दूर-दराज के दुर्गम इलाकों में निवास करते हैं इसलिए समुचित पर्यवेक्षण

Scanned with CamScanner

के अभाव में पुलिस आदिवासियों का जमकर शोषण करती है। धार उपन्यास में मैना जब अपना जब्त ठेला छुड़ाने के लिए थाने की ओर रुख करती है तो उसे लगता है जैसे नरक में जा रही हो - मगर जैसे-जैसे उसके कदम थाने की ओर बढ़ने लगे, उसने महसूस किया कि इत्ती रात को अकेले थाना जाना मरघट जाने से भी ज्यादा भयावना है। आगे कदम-दर-कदम वह ऐसे रख रही थी जैसे दलदल में पाँव रख रही हो।[2] यह वास्तव में विडंबनापूर्ण है कि जिन लोगों के ऊपर समाज की रक्षा का भार है वे ही समाज के भक्षक बने हुए हैं। आदिवासी इलाकों में अपराधियों की धर-पकड़ी के नाम पर कई बार पुलिस वाले उनकी बहू-बेटियों का शारीरिक शोषण करते हैं। गगन घटा घहरानी उपन्यास में लेखक इस संबंध में लिखता है- मर्दों को पकड़कर घर की कोठरियों में बंद कर दिया गया। लुटाने को उनके पास था ही क्या? पर जो लुटा उसकी कोई भरपाई नहीं हो सकती। जो टूटा उसकी जोड़ नहीं हो सकती। बहुओं-बेटियों, लड़कियों-किशोरियों की रक्त सनी देह कौन-सी आँख देख सकती है?[3]

आदिवासी पुलिस के अत्याचार से सदियों से पीड़ित रहे हैं। देश के लगभग हर आदिवासी समुदाय के लोग पुलिस को शोषक के रूप में देखते हैं। पुलिस के संबंध में जंगल जहाँ शुरू होता है में मलारी अपने भतीजे काली से कहती है-डाकू का विश्वास कर लेना, लेकिन किसी हाकिम का विश्वास मत करना।[4] यह बात सिद्ध करती है कि लोगों की नजर में पुलिस का चरित्र कितना संदेहास्पद है। कब तक पुकारूँ उपन्यास में पुलिस की बर्बरता पर टिप्पणी करते हुए प्यारी सुखराम से कहती है-भगवान से बच जायेगा, पर पुलिस से आज तक कोई नहीं बचा।[5] दुःखद स्थिति तो तब आती है जब पुलिस के लोग खुद इस स्थिति को स्वीकार करते हैं कि वे शोषक हैं। नदी के मोड़ पर उपन्यास के दरोगा का ये कहना कि- अरे, पुलिस वाले अपने बाप के भी नहीं होते।[6] स्थिति को अत्यंत चिंतनीय बना देता है। ऐसी स्थितियां आज भी समाज में बनी हुई हैं, यह दुर्भाग्यजनक है।

कब तक पुकारूँ उपन्यास में डॉ. रांगेय राघव ने पुलिस के अमानवीय चेहरे पर बहुत विस्तार से लिखा है। पुलिस के शोषण की सर्वाधिक शिकार खानाबदोश और घुमक्कड़ प्रवृत्ति की जनजातियाँ बनती हैं क्योंकि उनका कोई स्थायी घर नहीं होता और आजीविका के लिए वो जगह-जगह भटकते रहते हैं। उपन्यास में वर्णित नट जनजाति इसी तरह की जनजाति है। अपनी आजीविका के लिए वे स्थानांतरित होते रहते हैं और अक्सर पुलिस द्वारा तंग किये जाते हैं। उपन्यास का नायक सुखराम और उसकी पत्नी प्यारी पुलिस द्वारा शोषण के संबंध में सोचते हैं-हम इतना जानते थे कि सिपाही में बड़ी ताकत होती है। वह राजा का आदमी होता है। वह सबसे घूस लेता है। गाँव के लोग उससे डरते हैं। वह बड़ी जातों में उठता-बैठता है। वह जिधर जाता है उधर ही नट दौड़कर छिप जाते हैं। हम तो यही देखते आ रहे थे कि चाहे जब, चाहे

Scanned with CamScanner

जिस नटनी-करंजिया को पकड़ ले जाता है। हम सब उससे डरते थे क्योंकि वह थाने में पकड़ ले जाता था। वहाँ वह हमें चोर कह देता था। फिर हम लोग बेतों से पिटते थे। कभी-कभी गुड़ के पानी के छींटे दे दिये जाते थे जिससे चैंटे लग जाते थे और देही सूज जाती थी। फिर उसकी बात ही सच मानी जाती थी। हमें हमेशा गाली दी जाती थी। ज्यादा किसी ने सिर उठाया तो वह जेल की हवा खाता था। चक्की पीसते-पीसते उसकी धज्जियां उड़ जाती थीं।[7] पुलिस द्वारा बार-बार प्रताड़ित किये जाने से सुखराम बहुत दुःखी है। अपनी विवशता पर वह सोचता है- इस दुनिया में पुलिस क्यों रखी जाती है? वह दुनिया कितनी अच्छी होगी, जहाँ पुलिस नहीं होगी।[8] यह स्थिति आदिवासियों की विवशता को उजागर करने के साथ ही पुलिस की अमानवीयता और संवेदनहीनता को भी दिखाती है।

पुलिस के लोग नट स्त्रियों का दैहिक शोषण भी बहुत करते हैं। थाने और जेल का भय दिखाकर नट महिलाओं को अपना शरीर देने पर मजबूर किया जाता है। शोषण के इस स्वरूप के संबंध में द्वारका प्रसाद वर्मा कब तक पुकारूँ उपन्यास के आधार पर लिखते हैं-प्यारी को देखकर तो दरोगा सिपाही के द्वारा उसे बुलवाता है और प्यारी अपना शरीर बेचने को विवश हो जाती है, क्योंकि वह जानती है कि मना करने पर उसका बाप और पति दोनों ही पुलिस के अत्याचारों से पीड़ित होंगे और जेल भेज दिये जाने की शत-प्रतिशत संभावना है। इस सिलसिले में सहायता के लिए सुखराम जब दरबान जी के पास पहुंचता है, तो वहां जूतों से उसकी भयंकर पिटाई होती है, जिससे वह बेहोश हो जाता है। उस पर चोरी का इल्जाम लगाया जाता है, जिससे वह गिरफ्तार करके थाने में लाया जा सके।[9] पुलिस की बेवजह धरपकड़ और अत्याचार से सुखराम और प्यारी बहुत व्यथित हैं। उनकी विवशता यह है कि वे शोषित होने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकते हैं। उन्हें अपनी जिंदगी में चारों तरफ निराशा ही निराशा दिखाई देती है। सुखराम प्यारी से इस दुःख से निजात पाने के लिए कहता है-चल, हम और तू यहां से भाग चलें। हम इस रियासत में नहीं रहेंगे। गवरमेण्ट में चले जायेंगे, वहां अंगरेजों का राज है। वहां कोई नहीं पकड़ सकेगा हमें। क्यों? उसने कहाः वहां क्या सिपाही नहीं हैं? पुलिस नहीं है?[10] सुखराम और प्यारी के इस संवाद से कितनी बेचारगी, विवशता और पीड़ा झलकती है, इसका अनुमान लगाना आसान है।

नट जनजाति के जीवन पर आधारित एक अन्य उपन्यास शैलूष में भी पुलिस द्वारा किये जाने वाले शोषण का विस्तार से अंकन है। उपन्यास में जमीनी विवाद को लेकर जमींदार घुरफेंकन तिवारी और नट कबीले के बीच लंबा संघर्ष चलता है, येन-केन प्रकारेण जमींदार नटों को आवंटित भूमि को हथियाना चाहता है। जाति की दुहाई और रिश्वत के बल पर वह पुलिस को भी अपने पक्ष में करना चाहता है। घुरफेंकन तिवारी दरोगा परताप सिंह को अपने

Scanned with CamScanner

हितसाधन के लिए उकसाता है-हुजूर, यह लड़ाई तो जल्दी खत्म होने वाली नहीं है क्योंकि नीचे से ऊपर तक सारे अफसर नीच जातियों के हैं। इसलिए मुझे तो श्रद्धा कहिए, पूजा कहिए अथवा नजराना कहिए, सब केवल आपको देना है और मुझे पूरी उम्मीद है कि आप इन चोर, बदमाश नटों और नट-कन्याओं को तलवे के नीचे रगड़ देंगें।[11]

शैलूष उपन्यास में पुलिस महकमें में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या को भी उठाया गया है। घूस के लालच में अक्सर पुलिस केस को देनदार के पक्ष में मोड़ देती है। गरीब आदमी के पास निर्दोष होते हुए भी सजा भुगतने के अलावा कोई चारा नहीं होता है। इसी उपन्यास में थानेदार सूरजभान नौजादिक के संबंध में सब्बो से कहता है-कई जुर्म हैं उसके खिलाफ, तुम खातिर जमा रख बुढ़िया, मैं बिना जुर्म के किसी को बंद नहीं करता और जुर्म करने से ही जुर्म नहीं बनता। मैं निर्दोष से निर्दोष को इतना बड़ा जुर्म कारदां साबित कर सकता हूँ कि फांसी के अलावा उसके लिए कोई और राह बचेगी ही नहीं।[12] भ्रष्टाचार की समस्या को शैलूष उपन्यास में आगे पुनः उठाते हुए लेखक नौजादिक के माध्यम से कहता है- क्यों मौसी, कुल आठ-नौ लोग बंद हैं तेरे कबीले के। सुना है, कुबेर सिंह ने दो घंटे की मोहलत दी है कि व्यक्ति पीछे पाँच सौ रुपया नहीं, तो सौ चाबुक - इसी में से कोई एक चुनना है। मौसी, आज नटों को मान बाबा ही बचा सकते हैं। अगर दो घंटे के अंदर तमाम छोकरे और छोकरियों ने कुबेर की सिखाई बातों को दुहराना शुरू न किया तो नीचे अंगारों से भरी कड़ाही में मिर्च की बुकनी होगी और ऊपर शहतीरों से लटकते नट-छोरे और छोकरियां होंगे।[13] नदी के मोड़ पर उपन्यास में भी भ्रष्टाचार की समस्या को उठाया गया है। उपन्यास में ड्राइवर भद्दूसिंह से कहता है कि -पुलिस के हथकंडों में बड़ी आंच होती है, भैया! इनका मुकाबला केवल बनिया कर सकता है, क्योंकि उसके पास चांदी का जूता होता है।[14]

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यास अल्मा कबूतरी में पुलिस द्वारा शोषण की सर्वाधिक चर्चा की गयी है। बुंदेलखंड अंचल की खानाबदोश कबूतरा जनजाति दशकों से पुलिस के अत्याचार की शिकार है। वक्त-बेवक्त उनके डेरों पर पुलिस आ धमकती है और तरह-तरह के अमानवीय अत्याचार करती है। पुलिस के लोग कबूतराओं के साथ पाशविक व्यवहार करते हैं और उनकी औरतों, लड़कियों का खुला दैहिक शोषण करते हैं। कबूतरा बस्ती में पुलिस द्वारा डाली गई एक रेड की भयावहता का चित्रण करते हुए लेखिका लिखती हैं-बच्चे कहाँ? मुर्गियां कहाँ? कबूतरियों को अपना संसार याद आने लगा। बकरी .... बकरी का सिर उड़ गया। अरहर की पत्तियाँ हरी से लाल हो गईं। सरमन की औरत रो भी न सकी। डंडेवाला पीछे था, जांघों में डंडा घुसाने लगा। सरमन की औरत पूरी ताकत लगाकर चीखी-खसियाऽऽआ! खसिया के चेहरे पर दाद के रोगी जैसा भाव था।[15] कबूतरा बस्ती में पुलिस के छापे के बाद अफरा-तफरी मची है।

Scanned with CamScanner

पुलिस के घिनौने अत्याचार से महिलायें और लड़कियाँ सबसे ज्यादा प्रभावित हुई हैं। कई दर्द से कराह रही हैं तो कइयों के बदन पर कपड़े तक नहीं हैं। इस हृदय विदारक दृश्य पर लेखिका लिखती हैं-बच्चे गाँव से दूर पड़े घूरों को कुरेद आए। कुछ चिथड़े उखाड़ लाए। उन्होंने वे चिथड़े डेरों के भीतर माँ-काकियों के पास फेंक दिए। नहीं देखा कि वे चीरे गंदगी में लिथड़े हैं, माहवारी के खून में ...। फायदा भी क्या था, दूसरा सहारा न था। माँ-काकियों के नंगे बदन रह-रहकर आँखों में छा जाते।"[16]

अल्मा कबूतरी में रामसिंह पुलिस के शोषण का सर्वाधिक शिकार हुआ है। पुलिस की आँखों में वह दिन-रात इसलिए भी खटकता है कि वह पढ़-लिखकर मास्टर बन गया है और पुलिस की चौबीसों घंटे सलामी नहीं ठोंकता है। व्यवस्था का स्वरूप इतना गंदा हो गया है कि आम आदमी को अपने तरीके से जीवन जीने का अधिकार भी नहीं है। पुलिस का दीवान रामसिंह को प्रताड़ित करते हुए कहता है -

भाई, तू तो पद पाए, मद में आ गया। थाने के आगे से हाथी सा झूमता निकल जाता है। रामसिंह का मुँह खुल गया। दीवान जी क्या कह रहे हैं?

- तूने सोच लिया कि तेरा धंधा बदल गया तो हम भी बदल गए? हमारा महँगाई भत्ता बढ़ना बाकी है अभी। समझे?"[17] इस तरह हम देखते हैं कि एक आम आदिवासी यदि प्रयास करके किसी इज्जतदार जगह पर पहुँच जाता है तो भी उसका स्वाभिमान के साथ जीवन जीना आसान नहीं है। उपन्यास में आगे दीवान पुनः रामसिंह के स्वाभिमान को तार-तार करते हुए कहता है-

-तेरे दुख-तकलीफ कट गए तो क्या हमें मरा मान लिया? तेरी मतारी के पुराने खसम हैं। बापों को चाल बदलकर दिखा रहा है? रामसिंह ने कलाई में बँधी घड़ी देख ली। दीवान जल-भुन गया।

- साले तेरा टाइम खराब हो रहा है? ऐं? अम्मा की छातियाँ देखी हैं, समय खाए लटक गई हैं। बहन न हो तो बदले में कोई और ही दिला। हम भी जोरू-बच्चों को छोड़कर यहाँ पड़े हैं।"[18] दीवान के ये कथन सिद्ध करते हैं कि देश की पुलिस का चेहरा आज भी कितना घृणित और अमानवीय है। उसका मानवीय गरिमा और संवेदनाओं से कोई सरोकार नहीं है। पुलिस महकमें में व्याप्त भ्रष्टाचार की समस्या को भी लेखिका ने रेखांकित किया है। रामसिंह जब पुलिसवालों को महीने की रिश्वत नहीं दे पाता तो पुलिस के लोग उसके डेरे में आ धमकते हैं -

- अबके महीने क्या हुआ?

- बच्ची बीमार थी। पत्नी गर्भ से है।

- हरामी, हमारा हक मारने के लिए जोरू ग्याभन की थी?

Scanned with CamScanner

- हवलदार साहब !

- अरे ! जुबान लड़ाता है ? हमारी ताकत भूल गया ? इस औरत को अभी नंगी कर दें, बोल !'[19] बात इतने पर ही खत्म नहीं होती, जाते-जाते वे रामसिंह को पुनः धमकाते हैं-रामसिंह नौकरी मिली है, हमारा हक मारने का हक नहीं। रोटी मिल गई तो तू न्याय माँगने के लिए भी लड़ने लगा ! न्याय लेगा किससे ? डंडा, रायफल, पिस्तौल, हथगोलों जैसी ताकतें तो हमारे पास हैं बेटा। तू क्या, सारे देश पर यही ताकत हुकूमत करती है।'[20]

अल्मा कबूतरी में लेखिका ने पुलिस के शोषण के तमाम तौर-तरीकों का पर्दाफाश किया है। देश में पुलिस विभाग सबसे भ्रष्ट विभागों में से एक है। अमूमन देश में चलने वाले हर अवैध धंधे पुलिस की जानकारी में होते हैं और प्रायः उनमें उनकी मिलीभगत भी होती है। सब कुछ एक सुनियोजित षडयंत्र के तहत होता है और उसमें पिसते हैं गरीब और लाचार लोग। केहर सिंह और मंशाराम जब शराब का ठेका शुरू करते हैं तो उनके समक्ष पुलिस का हिस्सा देने की भी बात आती है-पुलिस को भी टुकड़ा डालते रहना पड़ेगा, वे हराम की खाने की लत पाल बैठे हैं। न मिले तो गुर्राते हैं। नजरअंदाज किया तो फाड़कर खा जाएंगे। सरकारी स्याही और कागज उनके पास है, न मालूम तकदीर को किस तरफ पलट दें ? ताल ठोकने वाले की खोपड़ी सरकार की रायफल की बट से फोड़ दी जाती है।'[21]

अपराधियों के एनकाउंटर के नाम पर निर्दोष आदिवासियों की हत्या किस कदर की जाती है इस समस्या को भी लेखिका ने अल्मा कबूतरी में उठाया है। श्रीराम शास्त्री जो डाकू से राजनेता बने हैं अल्मा को कबूतरी जानकर पुराने दिनों को याद करते हुए सोचते हैं कि- डकैत होने के जमाने से लेकर मुखबिरी तक देखा कि कितने ही कबूतरा डाकुओं के नाम की चिप्पी चिपकाकर मौत के नाम लिख दिए गए। कितने ही साँसी-कलंदर मुठभेड़ के हवाले करके इनामी डकैतों के लिए बलि चढ़ा दिए।'[22] वास्तव में पुलिस की यह प्रवृत्ति आज गंभीर रूप धारण करती जा रही है। देश में ऐसे तमाम उदाहरण मौजूद हैं जब आतंकवादी और अपराधियों के नाम पर निर्दोष नागरिकों की हत्या हुई है। आये दिन अखबारों में ऐसी खबरें प्रकाशित होती हैं। समाज में कानून-व्यवस्था बनाए रखना अनिवार्य है लेकिन उसके लिए निर्दोष नागरिकों की सरेआम हत्या की इजाजत नहीं दी जा सकती।

संजीव के उपन्यास जंगल जहाँ शुरू होता है में भी डाकुओं की समस्या के बहाने पुलिस के शोषण की कहानी बयान की गयी है। पुलिस व्यवस्था में जो-जो विसंगतियाँ हैं, अंतर्विरोध हैं, उन्हें हू-ब-हू उभारने की कोशिश संजीव द्वारा हुई है। उनकी राय में पुलिस अपराधियों का सबसे बड़ा संगठित गिरोह है। बिना सोच-समझ के पूर्व नियोजित धारणा के तहत वे अपने कारनामों का लगातार इस्तेमाल करती हैं।'[23] हालाँकि उपन्यास में डी.एस.पी. कुमार पुलिस के

Scanned with CamScanner

आम चेहरे से अलग मानवीय तरीके से समस्या को हल करने की कोशिश करते हैं, लेकिन अंततः वे भी अकेले पड़ जाते हैं और पलायन को मजबूर हो जाते हैं। कुमार का पलायन और डाकू परशुराम यादव की विजय समाज के लिए बहुत बड़ी विडंबना है।

आज पुलिस तंत्र में व्यापक सुधार की आवश्यकता है। हमें देश की पुलिस को अधिक से अधिक मानवीय और लोकतांत्रिक बनाना होगा। हमें आम आदमी के मन से पुलिस के भय को दूर करना होगा। देश के कमजोर तबकों के प्रति पुलिस अधिक संवेदनशील हो इसके लिए हमें उनके प्रशिक्षण स्तर से ही प्रयास करने होंगे। हमें पुलिस तंत्र में लोकतांत्रिक मूल्य विकसित करने होंगे। पुलिस के लोकतांत्रिक चरित्र से ही हम वास्तव में लोक कल्याणकारी राज्य का सपना साकार कर सकते हैं।

संदर्भ :

1. हिन्दुस्तान (दिल्ली संस्करण), 13 अक्टूबर 2009
2. संजीव, धार,राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, आवृत्ति 1997, पृ0 105
3. पाठक, मनमोहन, गगन घटा घहरानी, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2000, पृ0 169
4. संजीव, जंगल जहाँ शुरू होता है, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000, पृ0 202
5. राघव, रांगेय, कब तक पुकारूँ, राजपाल एंड संस, नईदिल्ली, संस्करण 2002, पृ0 43
6. सदन, दामोदर, नदी के मोड़ पर, पराग प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 1979, पृ0 50
7. राघव, रांगेय, कब तक पुकारूँ, राजपाल एंड संस, नईदिल्ली, संस्करण 2002, पृ0 48
8. वही, पृ0 116
9. वर्मा, द्वारका प्रसाद, रांगेय राघव के कथा साहित्य में जनजातीय जीवन, अकादमिक एक्सीलेंस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण2003, पृ0 42
10. राघव, रांगेय, कब तक पुकारूँ, राजपाल एंड संस, नईदिल्ली, संस्करण 2002, पृ0 63
11. सिंह, शिवप्रसाद, शैलूष, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989, पृ0 23
12. वही, पृ0 52

Scanned with CamScanner

13. वही, पृ0 121
14. सदन, दामोदर, नदी के मोड़ पर, परागं प्रकाशन, नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 1979, पृ0 51
15. पुष्पा, मैत्रेयी, अल्मा कबूतरी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम पेपरबैक संस्करण 2004, पृ0 44
16. वही, पृ0 47
17. वही, पृ0 100
18. वही, पृ0 100
19. वही, पृ0 103
20. वही, पृ0 104
21. वही, पृ0 212
22. वही, पृ0 366
23. जलील, डॉ. वी. के. अब्दुल (संपादक), समकालीन हिन्दी उपन्यासः समय और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2006, पृ0 205

सहायक प्राध्यापक हिन्दी
शासकीय महाविद्यालय बलरामपुर
जिला - बलरामपुर-रामानुजगंज (छ.ग.)

Scanned with CamScanner